शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका
17 नवम्बर 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

उपनिषदों का ईश्वरवादी सांख्य

डॉ.मनीषा कुमारी
संस्कृत एवं प्राच्यविद्या अध्ययन संस्थान
जवाहरलाल नेहरु विश्वविद्यालय
नई दिल्ली, भारत

प्राक्कथन

सांख्यदर्शन की गणना प्राय: निरीश्वरवादी दर्शन के रूप में की जाती है। सांख्य में जगत् के उपादान या निमित्त.कारण के रूप में ईश्वर की सत्ता स्वीकार नहीं की गई है। इस दर्शन के अनुसार प्रकृति और पुरुष दो ही परम.तत्त्व हैं और पुरुष की सन्निधिमात्र ही प्रकृति की सृष्टि करने में प्रवृत्ति के लिए पर्याप्त है। यद्यपि पुरुष को सृष्टि का उपादान कारण या निमित्त कारण स्वीकार नहीं किया गया है तथापि उसकी सन्निधि सृष्टि के लिए परमावश्यक मानी गयी है। प्रकृति से होने वाली इस सृष्टि का प्रयोजन भी प्रकृतिनिष्ठ बताया गया है। जिस प्रकार दुग्ध की प्रवृत्ति वत्स विवृद्धि के लिए होती है उसी प्रकार अचेतन प्रकृति की प्रवृत्ति भी पुरुष केभोगापवर्ग के लिए होती है। मोक्ष प्राप्ति प्रकृति पुरुष विवेक से ही संभव है। अतर: सांख्य में मोक्ष प्राप्ति के लिए भी ईश्वर को मानना आवश्यक नहीं समझा गया है। इसलिए भारतीय दार्शनिक परम्परा में 'चक्रे निरीश्वरं सांख्यं कपिलोऽन्यत्पतञ्जलि:' आदि वाक्यों में सांख्यदर्शन को निरीश्वरवादी दर्शन के रूप में स्मरण किया गया है। यद्यपि उपनिषदों में उल्लिखित सांख्य सिद्धान्त ईश्वरवादी ही प्रतीत होता है। इनमें ब्रह्म या परमात्मा को सर्वोच्च तथा नित्य बताया गया है और प्रकृति तथा पुरुष को उसके अधीन माना गया है। आधुनिक विचारक सांख्यदर्शन की दो स्थितियाँ स्वीकार करते हैं - प्रथम स्थिति में सांख्य ईश्वरवादी था और द्वितीय स्थिति में निरीश्वरवादी।

उपनिषदों का ईश्वरवादी सांख्य

उपनिषदों में पुरुष द्विविध रूप में उपलब्ध है - जीवात्मा रूप में तथा परमात्मा रूप में। वहाँ ईश्वर यथार्थ सत्ता के रूप में वर्णित है, जो जगत् का आदि निमित्त कारण, नियन्ता तथा अधिष्ठाता है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में काल, स्वभाव, नियति एवं आत्मा आदि को जगत् का मूल कारण होने का प्रतिषेध करके परमात्मा को ही जगत् का मूल निमित्त कारण कहा है[1]

प्रकृति तथा जीव के संयोग का कारण भी उसी को माना गया है।[2] वही प्रकृति के सहयोग से जगत् का निर्माण करता है।[3] परमात्मा जगत् का स्वामी तथा सभी देवताओं का जनक, अधिष्ठाता तथा पालक है।[4] उसी में प्रकृति तथा समस्त जीवों की सत्ता सनातन रूप में प्रतिष्ठित है।[5] वह परमात्मा अक्षर है,[6] जो सम्पूर्ण विश्व का अधिष्ठाता है।[7] यही जगत् का आदि निमित्त कारण है।[8] सभी प्राणियों में इसकी विद्यमानता है।[9] यही प्राकृतिक भोग विकारों को उत्पन्न करता है तथा समस्त गुणों का विनियोजक है।[10] वह गुणों का नियन्ता होने पर भी स्वयं निर्गुण है।[11] इस उपनिषद् में परमात्मा को 'गुणी',

'गुणेश' तथा 'प्रधानक्षेत्राधिपति' कहा गया है।[12] क्षर प्रकृति तथा अक्षर प्रकृति से सम्युपेत परमात्मा जगत् का धारक है।[13] इसी की प्रेरणा से सृष्टि प्रलय होते हैं।[14] इन समस्त प्रकृति तथा जीवात्माओं का अधिष्ठाता एकमात्र परमात्मा है।[15] मुण्डक उपनिषद्,[16] सन्यासोपनिषद्[17] तथा श्वेताश्वतर उपनिषद्[18] में ईश्वर के लिए 'विश्ववित' तथा 'सर्ववित' विशेषणों का प्रयोग है। श्वेताश्वतर उपनिषद् में कहा गया है कि वेद, यज्ञ, क्रतु, व्रत, भूत, भविष्य, वर्तमान सबका स्रष्टा ईश्वर है।[19] ईश्वर ही सभी भुवनों का रक्षक है, सम्पूर्ण जगत् उसके शासन में है, किन्तु उसका शासन करने में कोई शक्त नहीं है।[20] वह सभी के हृदय में स्थित है।[21] इसी उपनिषद् में ईश्वर का वर्णन विराट् रूप में किया गया है। यह विराट् पुरुष हाथों के बिना पकड़ लेता है, नेत्रों के बिना देख लेता है, कानों के बिना सुन लेता है।[22]

कठोपनिषद् में कहा गया है कि वह परमात्मा एक स्थान पर रहता हुआ भी सर्वत्र गमन करता है। सोया हुआ भी गतिशील रहता है तथा हर्ष विषाद से अविकृत रहता है।[23] वह किसी अन्य पर आश्रित नहीं है, उसका कोई स्वामी नहीं है तथा उसका कोई जनक नहीं है।[24] वह जगत् की उत्पत्ति-स्थिति-प्रलय का भी निमित्त कारण है।[25]

ईशावास्योपनिषद् में जगत् को ईश्वरावृत एवं व्याप्त कहा गया है।[26] इस उपनिषद में यह बताया गया है कि ईश्वर मन से भी तीव्रतर, इन्द्रियों द्वारा सर्वथा अग्राह्य है, स्थिर रहते हुए भी गतिशील है।[27] वह चल-अचल दोनों है, वह दूरान्तिक है तथा वही सभी प्राणियों के अन्तर-बहि: विद्यमान् है।[28]

कठोपनिषद् में कहा गया है कि परमात्मा के भय से ही अग्नि तपता है, उसी के भय से सूर्य तपता है, उसी के भय से इन्द्र, वायु तथा मृत्यु दौड़ते हैं।[29] इसी में बताया गया है कि जो शक्ति, नेत्र, वाणी तथा मन से परे है, वही ईश्वर है, उसी की शक्ति से समस्त इन्द्रियाँ अपने कार्यों में समर्थ होती हैं।[30] बृहदारण्यक उपनिषद् में परमात्मा को अन्तर्यामी कहा गया है, जो सभी आत्माओं में स्थित है।[31] इसी में ईश्वर को लोक, परलोक तथा समस्त भूतों का नियन्ता कहा गया है।[32] प्रश्नोपनिषद् में आत्मा पर तथा अपर ब्रह्म के रूप में वर्णित है।[33] निरालम्बोपनिषद् में ईश्वर को समस्त शक्तियों से समुपेत, आद्यन्तरहित, बुद्ध, पवित्र, शान्त, निर्गुण एवं चैतन्य स्वरूप कहा गया है।[34]

उपनिषदों में उल्लिखित सांख्य विचारधारा अध्यात्मोन्मुखी ईश्वरवाद है। उसमें ब्रह्म की या ईश्वर की धारणा सर्वोच्च तत्त्व के रूप में प्राप्त होती है और प्रकृति एवं पुरुष को गौण तथा परस्पर भिन्न स्वीकार किया गया है। कठ, श्वेताश्वतर एवं अपेक्षाकृत अर्वाचीन माने जाने वाले मैत्रायिणी तथा मण्डलब्राह्मणोपनिषद् में स्पष्ट रूप से इस विचारधारा के दर्शन होते हैं। कठोपनिषद् में पुरुष का वर्णन परमतत्त्व के रूप में किया गया है।[35]

श्वेताश्वतर उपनिषद् के प्रथम अध्याय के नवें मन्त्र में सर्वत्र अनादि ईश्वर, अल्पज्ञ भोक्ता जीव तथा उस जीव के लिए पदार्थों को प्रस्तुत करने वाली प्रकृति का स्पष्ट उल्लेख है।[36] इसी प्रकार प्रथम अध्याय के बारहवें मन्त्र में स्पष्टत: भोक्ता, भोग्य तथा प्रेरिता शब्द का प्रयोग हुआ है। भोक्ता जीवात्मा, भोग्य प्रकृति तथा प्रेरिता ईश्वर है। इससे यह भी सिद्ध हो जाता है कि जड़ प्रकृति ईश्वर की प्रेरणा के बिना कुछ भी नहीं

कर सकती। ईश्वर सत्त्व आदि गुणों का प्रवर्तक है।[37] अत: प्रेरक के अस्तित्व की उपेक्षा नहीं की जा सकती।

चतुर्थ अध्याय में प्रकृति को माया तथा ईश्वर को मायिन् अर्थात् प्रकृति पर नियन्त्रण रखनेवाला अधिष्ठाता बताया गया है।[38] वह प्रकृति के विभिन्न रूपों अर्थात् मूल प्रकृति एवं अवान्तर प्रकृतियों का अधिष्ठाता है।[39] जगत् का कारणभूत परमात्मा प्रत्येक वस्तु के स्वभाव को निष्पन्न करता है, परिणामयोग्य पदार्थों को परिणत करता है तथा सत्त्व आदि गुणों को नियुक्त करता है।[40]

छठे अध्याय में ईश्वर को 'गुणी' गुणेश' एवं 'प्रधान' क्षेत्रज्ञपति कहा गया है[41] और उसे जानने का साधन सांख्य, योग स्वीकार किया गया है। अपेक्षाकृत अर्वाचीन माने जाने वाले उपनिषदों में मैत्रायणी[42] में कर्मफलों से अनभिभूत, शुद्ध, अचल, निस्पृह परमात्मा का निर्देश किया गया है जो अकेला सर्वत्र संसार में व्याप्त है तथा कभी संसार के बन्धन में न आने के कारण कर्तृत्व तथा भोक्तृत्व आदि धर्मों से रहित है और जगत् की रचना करता है। इस उपनिषद् में परमात्मा को सत्त्वादि गुणों का प्रेरक माना गया है।[43] इसी प्रसंग में सत्त्व, रजस्, तमस् की तुलना क्रमश: विष्णु, ब्रह्मा और रूद्र से की गई है।[44] मण्डलब्राह्मणोपनिषद्[45] में जीव को चौबीस तत्त्वों से भिन्न पच्चीसवाँ तत्त्व तथा परमात्मा को छब्बीसवाँ तत्व बताया गया है। इस प्रकार उपनिषदों में सांख्य सिद्धान्तों का ईश्वरवाद के साथ समन्वय मिलता है।

निष्कर्ष

सांख्य परमार्थत: ईश्वर को अस्वीकार नहीं करता है। सांख्य में ईश्वर की मान्यता के अभाव के कारण ही कारण ब्रह्म के रूप में निर्गुण पुरुष सामान्य को स्वीकृत किया जाता है।[46] सांख्यदर्शन में कहीं भी ईश्वरवाद की निन्दा नहीं है।[47] सांख्य ग्रन्थों में लोकायत मत की भाँति नित्य ईश्वर का जो खण्डन प्राप्त होता है, उसका उद्देश्य ईश्वर के परिपूर्ण नित्य निर्दोश ऐश्वर्य के दर्शन से विवेक ज्ञान के साधक के चित्त के उसमें आविष्ट हो जाने के फलस्वरूप उसके विवेकाभ्यास के प्रतिबन्धित हो जाने की सम्भावना को दूर करना मात्र है।[48] सांख्यदर्शन का मुख्य प्रतिपाद्य विवेक ज्ञान है और वह उसी पर सबसे अधिक बल देता है।

सांख्य दार्शनिकों ने अभ्युपगमवाद से मीमांसकों को अभिमत ईश्वर के खण्डन को स्वीकार कर लिया है।[49] इसी प्रकार सांख्य दार्शनिकों ने बौद्ध मत के ईश्वरवाद के खण्डन को अभ्युपगमवाद से स्वीकार करके आत्म तथा अनात्म पदार्थ की विवेचना की।[50] सांख्य के अनीश्वरवाद को अभ्युपगमवाद से बौद्ध आदि मत का अनुवाद नहीं माना जायेगा।

सांख्यदर्शन में अभ्युपगमवाद तथा प्रौढिवाद से व्यावहारिक ईश्वर का प्रतिषेध होने से ईश्वरवादी ब्रह्ममीमांसा तथा योग के साथ सांख्य का विरोध नहीं है।[51] सांख्यसूत्रों में ईश्वर का जो खण्डन किया गया है, उसका तात्पर्य केवल यही प्रदर्शित करना है कि ईश्वर कि सिद्धि प्रमाणों से नहीं की जा सकती। यदि सूत्रकार का यह मन्तव्य नहीं होता और वे ईश्वर का अभाव सिद्ध करना चाहते हैं तो 'ईश्वरसिद्धे:'[52] इस सूत्र की रचना 'ईश्वराभावात्'[53] इस प्रकार करते।

यह मानना भी ठीक न होगा कि प्रकृति के सन्निधिमात्र से पुरुष में ईश्वरता आ जाती है क्योंकि यह स्वीकार कर लेने पर प्रकृति का सान्निध्य सभी पुरूषों के साथ होने के कारण सभी पुरूषों के ईश्वर हो जाने का प्रसङ्ग

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 नवम्बर 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

उपस्थित होगा और पूर्वपक्षी के ईश्वर को एक और अद्वितीय मानने के सिद्धान्त की हानि होगी।[54]

श्रुतियों में प्रतिपादित जन्य ईश्वर प्रकृतिलीनजीव हैं जो दूसरे सर्ग के आरम्भ में ईश्वरत्व भाव से पुनः आविर्भूत होते हैं। किन्तु ये ईश्वर नित्य ईश्वर या वास्तविक ईश्वर नहीं हैं, अपितु पुरुषकोटिक हैं[55] और इनका ऐश्वर्य परिमित होता है।

संदर्भ ग्रन्थ

1 कालः स्वभावोः नियतिर्दृच्छाः भूतानि योनि पुरुषः इति चिन्तया।

संयोग एषां न त्वात्मभावा.दात्माप्यनीशः सुखदुःखहेतोः॥

ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ।

यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥ श्वेताश्वतर उपनिषद्ए 1/2, 3

2 आदिः स संयोगनिमित्तहेतुः परस्त्रिकालादकलोऽपि दृष्टः।

तं विश्वरूपं भवभूतमीड्यं देवं स्वचित्तस्थमुपास्य पूर्वम् ॥ वही 6 / 5

3 एको हि रूद्रो न द्वितीयाय तस्थु र्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः।

प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपा॥ वही, 3 / 2

4 य एको जालवानीशत ईशनीभिः सर्वांल्लोकानीशत ईशनीभिः।

य एवैक उद्भवे सम्भवे च य एतद् विदुरमृतास्ते भवन्ति॥

एको हि रूद्रो न द्वितीयाय तस्थु र्य इमांल्लोकानीशत ईशनीभिः।

प्रत्यङ् जनास्तिष्ठति सञ्चुकोचान्तकाले संसृज्य विश्वा भुवनानि गोपा॥

यो देवानां प्रभवश्चोद्भवश्च विश्वाधिपो रूद्रो महर्षिः।

हिरण्यगर्भं जनयामास पूर्वं स नो बुद्ध्या शुभया संयुनक्तु॥ वही 3 / 1, 2, 4

5 क्षरं प्रधानममृताक्षरं हर क्षरात्मानावीशते देव एकः।

तस्याभिध्यानाद्योजनात्तत्त्व भावात् भूयश्चान्ते विश्वमायानिवृत्ति॥ वही, 1 / 10

6 द्वे अक्षरे ब्रह्मचरे त्वनन्ते विद्याविद्ये निहिते यत्र गूढे।

क्षरं त्वविद्या ह्यमृतं तु विद्या विद्याविद्ये ईशते यस्तु सोऽन्यः॥ श्वेताश्वतर उपनिषद्, 5 / 1

7 यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको विश्वानि रूपाणि योनीश्च सर्वाः।

ऋषिं प्रसूतं कपिलं यस्तमग्रे ज्ञानैर्बिभर्ति जायमानं च पश्येत् ॥ वही 5 / 2

8 एकैक जालं बहुधा विकुर्वन्नस्मिन् क्षेत्रे संहरत्येष देवः।

भूयः सृष्ट्वा पतयस्तयेश सर्वाधिपत्यं कुरूते महात्मा॥ वही, 5 / 3

9 सर्वा दिश ऊर्ध्वमधश्च तिर्यक् प्रकाशयन् भ्राजते यद्वनड्वान् ।

एवं स देवो भगवान् वरेण्यो योनिस्वभावानधितिष्ठत्येकरः॥

तद् वेदगुह्योपनिषत्सु गूढं तद् ब्रह्मा वेदते ब्रह्मयोनिम् ।

ये पूर्वं देवा ऋषयश्च तद् विदुस्ते तन्मया अमृता वै बभूव॥ वही, 5 / 4, 6

10 यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेद् यः।

सर्वमेतद् विश्वमधितिष्ठत्येको गुणांश्च सर्वान् विनियोजयेद् यः॥ वही, 5 / 5

11 एको देवः सर्वभूतेषु गूढ सर्वव्यापि सर्वभूतान्तरात्मा।

कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवास साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥ वही 6 / 11 स्

12 स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः।

प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेश संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः॥ वही, 6 / 16

शब्द–ब्रह्म
E ISSN 2320 – 0871
भारतीय भाषाओं की अंतर्राष्ट्रीय मासिक शोध पत्रिका 17 नवम्बर 2020
पीअर रीव्यूड रेफ्रीड रिसर्च जर्नल

13 संयुक्तमेतत् क्षरमक्षरं च व्यक्ताव्यक्तं भरते विश्वमीशः।
अनीशश्चात्मा बध्यते भोक्तृभावाज् ज्ञात्वा देवं मुच्यते सर्वपाशैः॥ वही, 1 / 8

14 किं कारणं ब्रह्म कुतः स्म जाता जीवाम केन क्व च संप्रतिष्ठा।
अधिष्ठाताः केन सुखेतरेषु वर्तामहे ब्रह्मविदो व्यवस्थाम् ॥ वही 1 / 1

15 ते ध्यानयोगानुगता अपश्यन् देवात्मशक्तिं स्वगुणैर्निगूढाम् ।
यः कारणानि निखिलानि तानि कालात्मयुक्तान्यधितिष्ठत्येकः॥ वही, 1 / 3

16 यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्य ज्ञानमयं तापः।
तस्मादेतद्ब्रह्म नाम रूपमन्नं च जायते॥ मुण्डक उपनिषद्, 1 / 1 / 9

य: सर्वज्ञः सर्ववित् यस्यैष महिमा भुवि।
दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः॥
मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय।
तद् विज्ञानेन परिपश्यन्ति धीरा आनन्दरूपममृतं यद् विभाति॥ वही, 2 / 2 / 7

17 सन्यासोपनिषद्ए ३

18 स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेश संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः॥ श्वेताश्वतर उपनिषद्, 6 / 16

19 छन्दांसि यज्ञाः क्रतवो व्रतानि भूतं भव्यं यच्च वेदा वदन्ति।
अस्मान् मायी सृजते विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञ कालकालो गुणी सर्वविद् य।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेश संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतु॥ वही, 4 / 9

20 स तन्मयो ह्यमृत ईशसंस्थो ज्ञ सर्वगो भुवनस्यास्य गोप्ता।
य ईशेऽस्य जगतो नित्यमेव नान्यो हेतुर्विद्यत ईशनाय॥ वही, 6 / 17

21 सर्वानन शिरोग्रीवः सर्वभूत गुहाशय।
सर्वव्यापि स भगवांस्तस्मात् सर्वगत शिवः॥
एको देवः सर्वभूतेषु गूढ सर्वव्यापि सर्वभूतान्तरात्मा।
कर्माध्यक्षः सर्वभूताधिवास साक्षी चेता केवलो निर्गुणश्च॥ वही, 3 / 11, 6 / 11

22 अपाणिपादो जवनो ग्रहीता पश्यत्यचक्षुः स शृणोत्यकर्ण।
स वेत्ति वेद्यं न च तस्यास्ति वेत्ता तमाहुरग्र्यं पुरूषं महान्तम् ॥ वही 3 / 19

23 आसीनो दूरं व्रजति शयानो याति सर्वत।
कस्तं मदामदं देवं मदन्यो ज्ञातुमर्हति॥ कठोपनिषद् 1 / 2 / 21

24 न तस्य कश्चित् पतिरस्ति लोके न चेशिता नैव च तस्य लिङ्गम् ।
स कारणं कारणाधिपाधिपो न चास्य कश्चिज्जनिता न चाधिपः। श्वेताश्वतर उपनिषद्, 6 / 9

25 स विश्वकृद् विश्वविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेश संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः॥ वही, 6 / 16

26 ईशावास्यमिदं सर्वं यत्किञ्च जगत्यां जगत्।
ईशावास्योपनिषद्, 1

27 अनेजदेकं मनसो जवीयो नैनद्देवा आप्नुवन् पूर्वमर्षत् ।
तद्धावतोऽन्यानत्येति तिष्ठत् तस्मिन्नपो मातरिष्वा दधाति॥ वही, 4

28 तदेजति तन्नैजति तद्दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतरू॥ वही, 5

29 भयादस्याग्निस्तपति भयात् तपति सूर्य।
भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चम॥ कठोपनिषद्, 2 / 3 / 3

30 इन्द्रियेभ्यः परा ह्यर्था अर्थेभ्यश्च परं मनः।
मनसस्तु परा बुद्धिर्बुद्धेरात्मा महान् पर॥ वही, 1 / 3 / 10

31 य इमं च लोके परं च सर्वाणि च भूतान्यन्तरो यमयति। बृहदारण्यक उपनिषद् 3 / 7 / 1

32 येनायं च लोकः परश्च लोकः सर्वाणि च भूतानि सन्दब्धानि भवन्ति। वही, 3 / 7 / 1

33 प्रश्नोपनिषद् 5 / 2

34 सकलशक्त्युपबृंहितमनाद्यनन्तं शुद्धं शिवं शान्तं निर्गुणमित्यादिवाच्यमनिर्वाच्यं चैतन्यं ब्रह्म। निरालम्बोपनिषद्, 4

35 कठोपनिषद्, 1 / 3 / 10, 11, 2 / 3/ 7-8

36 ज्ञाज्ञौ द्वावजावीशनीशावजा ह्येका भोक्तृभोग्यार्थयुक्ता।
अनन्तश्चात्मा व्श्वरूपो ह्यकर्ता त्रयं यदा विन्दते ब्रह्ममेतत् ॥ श्वेताश्वतर उपनिषद् 1/9

37 महान् प्रभुर्वै पुरुष सत्वस्यैष प्रवर्तकः।
सुनिर्मलामिमां प्राप्तिमीशानो ज्योतिरव्ययः॥ वही, 3 / 12

38 मायां तु प्रकृतिं विद्यान्मायिनं च महेश्वरम् ।
तस्यवयवभूतैस्तु व्याप्तं सर्वमिदं जगत् ॥ वही 4 / 10

39 यो योनिं योनिमधितिष्ठत्येको यस्मिन्निदाम् सं च विचैति सर्वम् ।
तमीशानं वरदं देवमीड्यं निचाय्येमां शान्तिमत्यन्तमेति॥ वही, 4 /11

40 यच्च स्वभावं पचति विश्वयोनिः पाच्यांश्च सर्वान् परिणामयेद् यः।
सर्वमेतद् विश्वमधितिष्ठत्येको गुणांश्च सर्वान् विनियोजयेद् यः॥ वही, 5 / 5

41 स विश्वकृद् विश्वाविदात्मयोनिर्ज्ञः कालकालो गुणी सर्वविद् यः।
प्रधानक्षेत्रज्ञपतिर्गुणेश संसारमोक्षस्थितिबन्धहेतुः॥ वही, 6 / 16

42 मैत्रायणी उपनिषद्, 2 / 7

43 वही, 3 / 3

44 वही, 5 / 2

45 मण्डलब्राह्मणोपनिषद्, 1 / 4

46 सां.प्र.भा. 6/66

47 वही उपो., पृष्ठ 3

48 वही

49 वही, 2/1/1

50 वही, 1/1/5

51 सां.प्र.भा. उपो., पृष्ठ 5

52 सां.सू. 1/92

53 सां.प्र.भा., 1/92

54 वही, 5 / 8-9

55 सां.सा., 6 /30